

विषय :- दल-बदल की अवसरवादी राजनीति

प्रस्तुतकर्त्री

डा. शीतल मीना आचार्य : राजनीति विज्ञान
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सैद्धांतिक तौर पर राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका यह है कि वे सामूहिक रूप से लोकतांत्रिक निर्णय लेते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष पश्चात् ही यह अनुभव किया जाने लगा कि राजनीतिक दलों द्वारा अपने सामूहिक जनादेश की अनदेखी की जाने लगी है। विधायकों और सांसदों के जोड़-तोड़ से सरकार बनने और गिरने लगी। अक्टूबर, 1967 में हरियाणा के एक विधायक गया लाल ने 15 दिनों के भीतर तीन बार दल बदलकर इस मुद्दे को राजनीति की मुख्यधारा में ला दिया था। उस दौर में 'आया राम गया राम' की राजनीति देश में काफी प्रचलित हो चली थी। भारतीय राजनीति में दलबदल की समस्या नई नहीं है। आजादी के कुछ ही वर्षों के पश्चात् यह महसूस किया जाने लगा कि राजनीतिक दलों द्वारा अपने सामूहिक जनादेश की अनदेखी की जा रही है। विधायकों और सांसदों के जोड़ तोड़ से सरकार बनने और गिरने लगी थीं। ऐसे दल-बदलुओं ने लोकतंत्र और राजनीतिक व्यवस्था के स्थायित्व को हमेशा ही संकट में डालने का काम किया है। भारतीय लोकतंत्र के लिए इसे चुनौती मानते हुए 1985 में भारतीय संविधान में 52वां संशोधन किया गया और दलबदल पर रोक लगाने के लिए विधेयक लाया गया जो एक मार्च 1985 से लागू हुआ। हालांकि ये भी अब नाकाफी साबित होने लगा है। भारत में ज्यादातर क्षेत्रीय या जाति आधारित-परिवार केंद्रित दलों ने राजनीतिक अवसरवाद को संस्थागत रूप दे दिया है। उनका पूरा ध्यान चुनावी लाभ पर रहता है। राष्ट्रीय दलों में भी चुनावी गणित को ध्यान में रख कर राजनीति की वास्तविक दिशा तय होती है। भाजपा तथा कांग्रेस जैसी पार्टियों में भी एक-दूसरे के नेताओं को ऐन चुनाव के वक्त अपनापने से परहेज नहीं किया जाता है। दलबदल कानून लागू होने के पश्चात नेता दल बदलने के लिए आचार संहिता लगने तक का इंतजार करते हैं, लेकिन इन राजनीतिक दलों द्वारा स्वयं के हित के लिए अपनी विपरीत विचारधारा के दलों से गठबंधन करना सिर्फ राजनीतिक अवसरवाद है। 1999 में विधि आयोग ने अपनी 70वीं रिपोर्ट में कहा था कि चुनाव से पूर्व दो या दो से अधिक पार्टियां गठबंधन कर चुनाव लड़ती हैं तो दलबदल विरोधी प्रविधान में उसे एक पार्टी के तौर पर माना जाए।

बीज शब्द- राजनीतिक दलों, अवसरवाद, संस्थागत, जोड़-तोड़, दल बदलकर, लोकतंत्र, चुनौती।

मानवीय जीवन के उजले और स्याह पहलुओं के बीच भेद बताने के लिए हमारे मनीषियों ने कुछ नियम और प्रावधान तय किए। ये नियम सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों पर आधारित थे। कालांतर में इन्हीं विचारों को लोग मानते गए और विचारधाराएं प्रस्फुटित हुईं। लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक की अपनी भी एक विचारधारा होती है जिसके आधार पर वह समान विचारधारा वाले दल से जुड़ता है। लेकिन वर्तमान परिवेश में मतदाता हैरत में है उसे समझ नहीं आ रहा है कि आखिर कल तक जो राजनेता एक दूसरे दल के विचारों से जुड़े थे, वे रातोंरात कैसे एक विपरीत विचारधारा से जुड़े

दल के खेमे में सहज हो जाते हैं। देश की राजनीति में 'आया राम गया राम' की संस्कृति त्रिव हो गई है। टिकट कट रहा हो या फिर तथाकथित मौसम विज्ञानी की तरह भविष्य की आहट देख ले रहे ये माननीय तुरंत पाला बदल रहे हैं। ये नेता तो अपना हित साध रहे हैं, लेकिन इस कुसंस्कृति को पुष्पित पल्लवित करने का श्रेय किसको जाता है ?

मतदाता अंसमज में है और सोच रहा है कि जिसकी अपनी कोई विचारधारा नहीं है, जिसकी अपनी कोई राजनीतिक पार्टी नहीं है, उसके लिए मतदाता और विधानसभा क्षेत्र की क्या अहमियत ? कल को मौका मिलेगा तो किसी तीसरी पार्टी से किसी चौथी विधानसभा चुनाव क्षेत्र को अपनी कार्यस्थली बना लेगा। मतदाता अपने मत के प्रति जवाबदेही चाहता है, खासकर उन राष्ट्रीय राजनीतिक दलों से जो विचारधारा आधारित होने का दम भरते हैं। आखिर ऐसे बिन पेंदी के लोटे दल-बदलूओं को प्रश्रय देकर लोकतंत्र की गरिमा में क्षरण के दोषी तो वे भी हैं।'

विश्व के किसी भी लोकतंत्र में ऐसा कानून नहीं जो जनप्रतिनिधियों को अपने दल का बंधक बना दे। इंग्लैंड में पार्टी व्हिप के विरोध पर दल की सदस्यता चली जाती है, लेकिन संसद की सदस्यता नहीं जाती। आस्ट्रेलिया में भी पार्टी व्हिप का उल्लंघन करने पर सदस्यता समाप्त नहीं होती। हालांकि ऐसी स्थिति में सांसद से त्यागपत्र की अपेक्षा की जाती है। इंग्लैंड में प्रधानमंत्री बोरिस जानसन की कंजरवेटिव पार्टी के 38 सदस्यों ने 'ब्रेक्सिट' पर सरकार के विरुद्ध मतदान किया था। अमेरिका में भी डोनाल्ड ट्रंप पर महाभियोग को लेकर रिपब्लिकन और डेमोक्रेट दोनों दलों के कुछ सदस्यों ने अपने-अपने दल की लीक से हटकर मतदान किया था। दरअसल 1967 में 'कांग्रेस सिस्टम' टूटने की शुरुआत से राज्यों में गंभीर राजनीतिक अस्थिरता आई थी, लेकिन आज लोकतंत्र की जड़ें गहरी हैं। दलबदल से उत्पन्न अस्थिरता के निदान के लिए हम जर्मनी का 'रचनात्मक अविश्वास प्रस्ताव' मॉडल अपना सकते हैं, जिसके अनुसार संसद 'फेडरल चांसलर' को अविश्वास प्रस्ताव द्वारा तभी हटा सकती है, जब वह बहुमत रखने वाले किसी दूसरे चांसलर को भी चुने। इससे वहां एक सरकार गिरती है तो तुरंत ही दूसरी कार्यभार संभाल लेती है। यही व्यवस्था स्पेन, हंगरी, इजरायल, पोलैंड और बेल्जियम आदि देशों में है। अक्सर राज्यों में सत्तारूढ़ पार्टियां अपनी सरकार के स्थायित्व के लिए विधायकों को किसी 'रिसोर्ट' या 'आलीशान' होटल में बंधक बनाकर रखती हैं। राजस्थान में 2020 में, कर्नाटक में 2019 में और तमिलनाडु में 2017 में ऐसे ही नजारे देखने को मिले। क्या इसे कोई भी संवैधानिक या विधिक व्यवस्था रोक सकती है ?

वर्तमान कानून में दलबदल की अवधारणा को लेकर भी विवाद है। दलबदल कानून में स्वेच्छा से पार्टी छोड़ने या 'दलीय व्हिप' का उल्लंघन करने को दलबदल माना गया। जबकि दल विभाजन (एक-तिहाई सदस्यों द्वारा) या पार्टी विलय (दो-तिहाई सदस्यों द्वारा) को दलबदल नहीं माना गया। हालांकि 2003 में 91वें संविधान संशोधन द्वारा 'दल विभाजन' को भी दलबदल मान लिया गया, जिससे छोटे दलों में दल विभाजन के माध्यम से दलबदल पर रोक लग सके। दलबदल कानून की प्रक्रिया पर भी विवाद है। किसी दल के सदस्य द्वारा दलबदल किए जाने पर पीठासीन अधिकारी उसका स्वतः संज्ञान नहीं ले सकता। वह तभी उस पर कोई दंडात्मक कार्यवाही कर सकता है, जब उसका दल इस संबंध में कोई अर्जी लगाए। पीठासीन अधिकारी द्वारा निर्णय को लेकर किसी समय सीमा का भी प्रविधान नहीं है। भारत

में ज्यादातर क्षेत्रीय या जाति आधारित-परिवार केंद्रित दलों ने राजनीतिक अवसरवाद को संस्थागत रूप दे दिया है। उनका पूरा ध्यान चुनावी लाभ पर रहता है। राष्ट्रीय दलों में भी चुनावी गणित को ध्यान में रख कर राजनीति की वास्तविक दिशा तय होती है। भाजपा तथा कांग्रेस जैसी पार्टियों में भी एक-दूसरे के नेताओं को ऐन चुनाव के वक्त अपनाने से परहेज नहीं किया जाता है। दलबदल कानून लागू होने के पश्चात नेता दल बदलने के लिए आचार संहिता लगने तक का इंतजार करते हैं, लेकिन इन राजनीतिक दलों द्वारा स्वयं के हित के लिए अपनी विपरीत विचारधारा के दलों से गठबंधन करना सिर्फ राजनीतिक अवसरवाद है। महाराष्ट्र में भाजपा के साथ गठबंधन में चुनाव लड़ने वाली शिवसेना वहां कांग्रेस और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के साथ मिलकर सरकार चला रही है। 1999 में विधि आयोग ने अपनी 70वीं रिपोर्ट में कहा था कि चुनाव से पूर्व दो या दो से अधिक पार्टियां गठबंधन कर चुनाव लड़ती हैं तो दलबदल विरोधी प्रविधान में उसे एक पार्टी के तौर पर माना जाए।²

उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य भारतीय राजनीति में दल-बदल की घटनाओं का विवरण कर इसके देश की राजनीति पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करना है।

अध्ययन पद्धती

अध्ययन के आयामम सैद्धान्तिक एवं अनुभवमूलक है। सैद्धान्तिक पक्षों के अध्ययन के लिए विषय से संबंधित पुस्तक, पत्र-पत्रिकाएँ एवं इंटरनेट आदि की मदद ली गई है। आनुभाषिक पक्षों का अध्ययन विभिन्न राज्यों में विधायकों एवं सांसदों की दल-बदल की घटनाओं की सोदाहरण विवेचना की गई है।

साहित्य समीक्षा

प्रस्तुत विषय पर व्यापक साहित्य उपलब्ध है। चेतना नेहरा, लोकतंत्र और दल-बदल, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, 2020³ प्रस्तुत पुस्तक में लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में दल-बदल की समस्या का विशद विवेचन किया है। दल-बदल, दीपक दीक्षित, किंडल प्रकाशन,⁴ पुस्तक में एक नेता के मन में होती उथल-पुथल के माध्यम से वैचारिक मंथन किया गया है। रजनी रजनी कोठारी (अनुवाद अभय कुमार दुब) भारत में राजनीति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2023 पुस्तक में भारत में राजनीति में आधुनिकीकरण में बाँधक तत्वों का विवेचन किया गया है। पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 1997⁵ पुस्तक में भारतीय राजनीति में दल-बदल के कारण, प्रभाव व रोकने के उपायों की विस्तृत विवेचना की गई है। सुभाष कश्यप ने दल-बदल और राज्यों की राजनीति, इलाहाबाद 1970 पुस्तक में दल-बदल और राज्यों की राजनीति का विस्तृत विवेचन किया है।

दलबदल विरोधी कानून क्या है ?

वर्ष 1985 में 52 वें संविधान संशोधन के माध्यम से देश में दलबदल विरोधी कानून पारित किया गया और इसे संविधान की दसवीं अनुसूची में जोड़ा गया। इस कानून का मुख्य उद्देश्य भारतीय राजनीति में दलबदल की कुप्रथा को समाप्त करना था। इस कानून के अनुसार किसी जनप्रतिनिधि को अयोग्य घोषित किया जा सकता है यदि

- एक निर्वाचित सदस्य स्वेच्छा से किसी राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है।
- कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
- किसी सदस्य द्वारा सदन में पार्टी के रुख के विपरीत वोट किया जाता है।
- कोई सदस्य स्वयं को वोटिंग से अलग रखता है।
- छह महीने की अवधि के बाद कोई मनोनीत सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
- कानून के अनुसार, सदन के अध्यक्ष के पास सदस्यों को अयोग्य करार देने संबंधी निर्णय लेने की शक्ति है। अध्यक्ष जिस दल से यदि शिकायत है उसी दल से संबंधित है तो सदन द्वारा चुने गए किसी अन्य सदस्य को इस संबंध में निर्णय लेने का अधिकार है।⁶

दलबदल बीते वर्षों में भारतीय राजनीति में एक प्रमुख समस्या बन गयी है। आज राजनीति में शुचिता, समर्पण और पारदर्शिता जैसे शब्द तो बोझ प्रतीत होने लगे हैं। नेता अवसर की तलाश में बैठे हैं। किसी तरह बस स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए। विचार तो अब सस्ते रेडीमेड कपड़ों जैसे हो गए हैं। पहनिए और और फेंक दीजिए। राजनीति में दलबदल ऐसा दलदल है, जिसने लोकतंत्र को रसातल में ले जाने का ही काम किया है। राजनीतिक दल यूं ही नहीं बन जाते। उनके बनने के पीछे एक सामरिक इतिहास होता है, परिस्थितियों से उपजा अनुभव होता है और सबसे बढ़कर नीतियों की परख होती है। तब राजनीतिक दलों के लिए जमीन तैयार होती है। दलबदल और दलबदलूओं ने इसी जमीन को कमजोर किया है। निष्ठाएं जब हित साधने का माध्यम बनने लगती हैं, तब राजनीति को ऐसे ही संकट से जुझना पड़ता है, जैसे वर्तमान में हो रहा है। जब दलों पर कार्यकर्ताओं की जगह अवसरवाद हावी होने लगे तो बेहतर की उम्मीद बेमानी हो जाती है। इस बात से इन्कार नहीं कि समय के साथ राजनीतिक परंपराओं का भी अवमूल्यन हुआ है, लेकिन इसके लिए सिर्फ राजनीतिक दलों को ही उत्तरदायी मान लेना सही नहीं होगा। वास्तविकता यह है कि इस समस्या के लिए हम सब बराबर के भागीदार हैं।⁷ राजनीतिक दलों ने एक भ्रम पैदा किया हुआ है कि 'जनता सब जानती है' जबकि जनता सिर्फ इस्तेमाल होती है। नेता रातोंरात पाला बदल लेते हैं और जनता को लगता है कि उसके प्रश्नों ने उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर किया। ऐसे राजनेताओं के लिए सत्ता का लोभ ही उनका एकमात्र लक्ष्य हो जाता है। यहीं से राजनीति में व्यक्तिवाद, परिवारवाद और जातिवाद का जन्म होता है। यहीं से सरकारी धन का दुरुपयोग और योजनाओं में अयोग्य व्यक्तियों को लाभ देकर कर राजनेता अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाते हैं, उसे मजबूत करता है। साथ ही अपना वर्चस्व इस दल या उस दल को दिखाकर राजनीतिक दलों के लिए अपरिहार्य बन जाता है। यह स्वस्थ एवं जागरूक प्रजातंत्र के लिए अच्छा संकेत नहीं माना जा सकता। कुल मिलाकर ऐसे नेता, जिनकी प्रतिबद्धता अपने क्षेत्र और दल के प्रति नहीं, जो मौका देखकर पाला बदलते हैं, प्रजातंत्र का विद्रुप है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राजनीति समाज को बदलने का माध्यम है। वह समाज से निकलती है, मगर यथास्थिति उसका गंतव्य नहीं। राजनीति में निरंतरता का होना बेहद जरूरी है और ऐसा गतिशीलता के बिना संभव नहीं। अन्यथा वर्तमान स्थितियां बदलने वाली नहीं हैं। गलत का क्षणिक विरोध होगा और फिर सब इसका हिस्सा बन जाएंगे।

चुनाव का एलान होते ही नेताओं का दलबदल शुरू हो गया है। नेताओं के इस दलबदल में सबसे ज्यादा ठगा महसूस करता है मतदाता। ऐसा इसलिए भी होता है कि हमारी चुनावी व्यवस्था में मतदाताओं से पूछकर उम्मीदवार उतारने की कोई प्रक्रिया ही नहीं है। राजनीतिक पार्टियां किसी को भी कहीं से खड़ा कर देती हैं और मतदाताओं को उन्हीं में से चुनना होता है। उम्मीदवार का फैसला जमीन पर नहीं बल्कि पार्टियों के हाईकमान से होता है। जनता की इसमें कोई भूमिका नहीं होती। इसीलिए पार्टी बदलते समय भी नेताओं को जनता के प्रति कोई जवाबदेही नहीं अनुभव होती है।⁸ कई साल पहले कांग्रेस ने हैदराबाद के एक नेता को मुरादाबाद में उतार दिया। स्थानीय कांग्रेसियों ने इसका विरोध किया और प्रचार करने से मना कर दिया। उन दिनों सौ रुपए रोजाना लेकर पोस्टर आदि लगाए जाते थे और प्रचार का काम किया जाता था। उस उम्मीदवार ने उन्हें तीन सौ रुपये रोजाना देने का आफर दिया। सभी मान गए। प्रचार शुरू हो गया। इसलिए पैसे के दबाव में स्थानीय कार्यकर्ता भी विरोध से कतराते हैं। 1935 में बंबई (अब मुंबई) में सहकारिता के लिए काम कर रहे वैकुण्ठ भाई मेहता को लोगों ने चुनाव में उतरने को कहा लेकिन वह नहीं माने। उन्होंने महात्मा गांधी को पत्र लिखकर पूछा कि क्या करना चाहिए। महात्मा गांधी ने उन्हें जवाबी पत्र में कहा कि लोग कह रहे हैं तो आपको जरूर लड़ना चाहिए, लेकिन आप किसी से वोट मांगने नहीं जाओगे और कोई पैसा खर्च नहीं करोगे। वैकुण्ठ भाई मेहता ने ऐसा ही किया। वे भारी मतों से चुनाव जीत गए। ऐसा नहीं है कि लोगों से जुड़ा व्यक्ति चुनाव नहीं जीत सकता है। लेकिन राजनीतिक दलों ने पैसे को इतना महत्त्व दे दिया है कि अब केवल पैसे वाले या आपराधिक पृष्ठभूमि वाले ही आगे आ रहे हैं। आंकड़े बताते हैं कि 50 प्रतिशत से ज्यादा सीटों पर आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवार हैं। राजनीतिक दल भी अब कुछ धनाढ्य सात-आठ परिवारों की बपौती बन गई है। ऐसे में मतदाता लाचार होकर रह जाता है। एक समस्या यह भी है कि चुने गए लोग भी अक्सर पार्टी हाईकमान के हाथ की कठपुतली ही होकर रह जाते हैं। दलबदल विरोधी कानून लाया गया था कि विधायकों, सांसदों की खरीद-फरोख्त न हो सके। हालांकि अब देखने में आता है कि आधी पार्टी ही टूटकर दूसरे में मिल जाती है। जब तक राजनीतिक दलों की कोई जवाबदेही तय नहीं होगी, तब तक इसका कोई हल निकलता नहीं दिख रहा है। चुनावों की आहट आते ही अवसरवाद की राजनीति दिखाई देती है विचारधारा गौण हो जाती है जिसकी पुष्टि राज्यों की निम्न घटनाओं से होती है—

उत्तरप्रदेश

स्वामी प्रसाद मौर्य – कुशीनगर की पटरीना विधानसभा क्षेत्र से विधायक कैबिनेट मंत्री रहे स्वामी प्रसाद मौर्य ने सपा का दामन थामा है। पड़रौना से वर्ष 2009 के उप चुनाव में बसपा से विधायक बने। बसपा से ही 2012 में जीत दर्ज की। 2017 में भाजपा में शामिल हुए और भाजपा प्रत्याशी के रूप में लगातार तीसरी बार जीत दर्ज की। पुत्री संघमित्रा मौर्य बदायूं से भाजपा सांसद हैं।

धर्म सिंह सैनी— सहारनपुर की नकुड़ विधानसभा सीट से भाजपा विधायक एवं प्रदेश सरकार में मंत्री धर्म सिंह सैनी समाजवादी पार्टी में चले गए हैं। धर्म सिंह इससे पहले 2002, 2007 व 2012 में बसपा के टिकट पर नकुड़ से विधायक रहे। 2007 में वह बसपा सरकार में मंत्री भी रहे। 2017 में ये भाजपा के टिकट पर विधायक बने थे।

नरेश सैनी – नरेश सैनी सहारनपुर की बेहट विस सीट से कांग्रेस के विधायक थे। इन्होंने कांग्रेस छोड़कर भाजपा का दामन थाम लिया है। 2012 में भी ये बेहट से कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़े थे लेकिन हार गए थे। भाजपा ने इस बार इन्हें बेहट से ही प्रत्याशी बनाया है।

दारा सिंह चौहान – मऊ की मधुबन सीट से विधायक और प्रदेश सरकार में वन मंत्री रहे दारा सिंह चौहान हाल ही में भाजपा का दामन छोड़कर सपा में शामिल हो गए हैं। दारा सिंह बसपा में रहते सांसद भी रहे हैं।

प्रमोद गुप्ता – प्रमोद गुप्ता सपा संरक्षक मुलायम सिंह यादव के साढ़ू है। वर्ष 2007 में वह सपा से टिकट न मिलने पर निर्दलीय लड़े और जीते। 2012 में सपा से लड़ने का मौका मिला और विधायक बने। हाल ही में भाजपा में शामिल हुए हैं।

इमरान मसूद – सहारनपुर निवासी कांग्रेस के राष्ट्रीय सचिव पूर्व विधायक इमरान मसूद ने पार्टी को अलविदा कह सपा की सदस्यता ले ली है। 2007 मुजफ्फराबाद से निर्दलीय विधायक बने थे। मसूद अख्तर सहारनपुर देहात से कांग्रेस के विधायक मसूद अख्तर ने अब समाजवादी पार्टी की सदस्यता ले ली है। मसूद अख्तर पहली बार विधायक बने हैं।

अवतार सिंह भड़ाना – भाजपा के टिकट पर 2017 में मीरपुर से विधायक बने। चुनाव जीतते ही पार्टी को अलविदा कहा। अब रालोद की सदस्यता ग्रहण की। सपा-रालोद गठबंधन ने इन्हें गौतमबुद्ध नगर की जेवर सीट से प्रत्याशी बनाया है।

रामवीर उपाध्याय: सादाबाद(हाथरस) सीट से बसपा विधायक रामवीर उपाध्याय भाजपा में शामिल हो गए। भाजपा ने इन्हें टिकट भी दिया है।

विनय शंकर तिवारी– गोरखपुर की विलूपार विधानसभा सीट से बसपा विधायक विनय शंकर तिवारी समाजवादी पार्टी में चले गए हैं।

हरिओम यादव– सपा से बर्खास्त सिरसागंज के विधायक व सपा संरक्षक मुलायम सिंह यादव के समधी हरिओम यादव भाजपा में शामिल हो गए हैं। भाजपा ने इन्हें टिकट भी दिया है।

ललितेशपति त्रिपाठी– मीरजापुर के मड़िहान से कांग्रेस के पूर्व विधायक और पूर्व मुख्यमंत्री स्व.कमलापति त्रिपाठी के प्रपौत्र तृणमूल कांग्रेस में शामिल हो गए हैं। एक बार फिर मड़िहान सीट से उनके चुनाव लड़ने की चर्चा है।

पंजाब

राणा गुरमीत सिंह सोढी– कांग्रेस में साढ़े चार साल तक कैबिनेट मंत्री रहे सोढी भाजपा में गए। राणा कैप्टन अमरिंदर सिंह के करीबी मंत्री थे।

फतेहजंग बाजवा– कादियां से विधायक कैप्टन अमरिंदर सिंह के करीबी थे। कांग्रेस के राज्य सभा सदस्य प्रताप सिंह बाजवा के सगे भाई हैं। अब भाजपा से जुड़ गए हैं।

बलविंदर लाडी– श्री हरगोविंदपुर से विधायक कांग्रेस से टिकट कटने की आशंका में भाजपा का रुख किया। छह दिन बाद ही कांग्रेस में लौटे। इस उठापटक के बाद भी उनका टिकट कट गया है।

डा.हरजोत कमल –मोगा से 2017 में चुनाव जीते डा.हरजोत सिद्धु के काफी निकट माने जाते थे। लेकिन कांग्रेस ने मालविका सूदको मोगा से टिकट दिया तो डा.हरजोत भाजपा में चले गए।

निमिशा मेहता – कांग्रेस से 2017 में गढ़शंकर सीट से चुनाव में उतरी थी। इस बार टिकट नहीं मिलने पर उन्होंने भाजपा का दामन थाम लिया।

अमनदीप सिंह आशु बांगड़ – आम आदमी पार्टी ने फिरोजपुर देहाती से टिकट दिया था, लेकिन उन्होंने कांग्रेस का दामन थाम लिया। कांग्रेस ने फिरोजपुर देहाती से ही चुनाव लड़वाने की घोषणा की है।

उत्तराखंड

हरक सिंह रावत – भाजपा और सरकार से बर्खास्तगी के बाद हरक सिंह रावत फिर कांग्रेस में पहुंच गए हैं। 2016 में हरक सिंह उन नौ विधायकों में शामिल थे, जिन्होंने पाला बदल कर हरीश रावत के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार को संकट में डाल दिया था।

यशपाल आर्य और संजीव आर्य – भाजपा सरकार के कैबिनेट मंत्री यशपाल आर्य और उनके विधायक पुत्र संजीव आर्य ने कांग्रेस का दामन थाम लिया। वह 2017 में कांग्रेस से नाराज होकर भाजपा में चले गए थे।

राजकुमार –पुरोला से कांग्रेस विधायक राजकुमार भाजपा के खेमे में आ गए हैं। 2007 में वह भाजपा में थे। 2012 में निर्दलीय चुनाव लड़े और 2017 में कांग्रेस में चले गए थे।

2016 से 2020 के बीच पूरे देश में दलबदल करने वाले विधायकों की हिस्सेदारी जो भाजपा में शामिल हुए। इनमें से 42 फीसद विधायक कांग्रेस छोड़कर आए थे। एडीआर की रिपोर्ट में इस समयावधि के दौरान कुल 405 विधायकों के दलबदल का उल्लेख है।⁹

वर्तमान में दलबदल विरोधी कानून प्रासंगिकता

दलबदल विरोधी कानून ने काफी हद तक सरकारों को स्थिरता प्रदान करने में भूमिका निर्वाह की है। कानून बनने से पहले कई बार ऐसे मामले आए जब निजी लाभ के लिए सत्ताधारी दल के नेता अन्य दल में शामिल होकर सरकार बना लेते थे। इससे सरकारों के असमय गिरने की आशंका बनी रहती थी। कानून ने इस तरह की अनिश्चितता को काफी हद तक कम किया। हालांकि चुनाव के आसपास सदस्यता त्यागकर पार्टियां बदलना पहले की तरह जारी है। सदस्यता छोड़ने के बाद कोई भी किसी पार्टी में जा सकता है। ऐसे में कई बार जनता ठगा सा अनुभव करती है। जब कुछ समय पहले तक किसी एक पार्टी की पैरवी कर रहा नेता अचानक किसी अन्य दल के गुण गाने लगता है। इस प्रकार की घटनाओं को रोकने के लिए भी प्रविधान की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। हाल में उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने दलबदल निरोधक कानून में संशोधन का आह्वान किया। 1985 में संविधान में दसवीं अनुसूची जोड़ दलबदल निरोधक कानून बनाया तो गया, लेकिन इससे अभीष्ट की अपेक्षित पूर्ति न हुई। परिणामस्वरूप सरकारें गिरती-बनती रहती हैं। मध्य प्रदेश में कांग्रेस के 22 विधायकों के दलबदल से कमलनाथ की 15 माह पुरानी सरकार सत्ता से बाहर हो गई थी। 2019 में गोवा में कांग्रेस और सिक्किम में सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट के 15 में से 10 विधायकों ने अपनी-अपनी पार्टी का

भाजपा में विलय कर लिया था। राजस्थान में बसपा के सभी छह विधायक कांग्रेस में चले गए। यह क्रम चलता रहता है। जब दलबदल की समस्या जस की तस कायम है तो फिर दलबदल निरोधक कानून का क्या औचित्य ? अपितु इससे जनप्रतिनिधियों की विधायी सदनों में अपने दल के विरुद्ध आवाज उठाने की स्वतंत्रता चली गई। विपक्षी दलों से समर्थन लेने का अवसर खत्म हो गया। विपक्षी सदस्यों द्वारा सरकार के अच्छे कानूनों को समर्थन देने की गुंजाइश समाप्त हो गई। लोकतंत्र एक यांत्रिक व्यवस्था में जकड़ गया।¹⁰

दलबदल-विरोधी कानून में मुख्य समस्या यह है कि याचिका पर निर्णय करने की सारी शक्ति अध्यक्ष को दी गई है। सभी राजनीतिक पार्टियों ने कानून को विफल बनाने के लिए अध्यक्ष का हथियार की तरह प्रयोग किया है। सिद्धान्त रूप से माना जाता है कि अध्यक्ष या सदन के पीठासीन अधिकारी के रूप में चयनित होने के बाद कोई विधायक या सांसद पक्षपाती नहीं रह जाता है। लेकिन व्यवहार में वे पक्षपाती बने रहते हैं। वे अपनी पार्टी के सर्वोच्च नेता के इशारे पर ही काम करते हैं। किसी भी पार्टी का नेता आमतौर से चाहता है कि अध्यक्ष अयोग्यता याचिका पर उस समय तक निर्णय न करे, जब तक सदन का कार्यकाल न समाप्त हो जाए। इससे नेतृत्व को याचिका को निष्प्रभावी बनाने में सहायता मिलती है, जबकि वह ऐसा करते नहीं दिखता है। इस प्रकार यह मामला एक नए सदन को स्थानान्तरित हो जाता है। अध्यक्ष पार्टी नेतृत्व का समर्थन करने के लिए सुनवाई की लंबी तारीखें देता है तथा प्रक्रिया व प्रमाण के मुद्दों को लंबा खींचने का प्रयास करता है। कोई भी अध्यक्ष पर सवाल नहीं उठा सकता है। याचिकाकर्ता तथा पीड़ित विपक्षी राजनीतिक दल को उसकी खुली पक्षधरता के सामने घुटने टेकने पड़ते हैं। यहां तक कि न्यायपालिका भी अध्यक्ष पर सवाल ही उठा सकती है क्योंकि काम अध्यक्ष द्वारा निर्णय लेने के पहले उसे मामले में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देता है। इस कारण पार्टी नेतृत्व पालाबदल करने वालों को तत्काल महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर उनकी सहायता करता है और वे सदन का कार्यकाल समाप्त होने तक इस पर बने रहते हैं। अपनी पार्टी नेताओं के साथ मिलीभगत के 35 साल से कानून का उद्देश्य विफल करने के लिए अध्यक्ष अयोग्यता कार्यवाहियों को लंबा खींचते रहे हैं क्योंकि उनको अपना निर्णय देने में न्यायपालिका से हस्तक्षेप का कोई भय नहीं रहा है। लेकिन 2020 में धूनाजोम श्यामकुमार सिंह के मामले से यह स्थिति बदल गई है। धूनाजोम श्यामकुमार सिंह को मणिपुर में कांग्रेस के टिकट पर 2017 में विधायक चुना गया। निर्वाचन के बाद वे भाजपा में चले गए, उनको पार्टी ने एक कैबिनेट सीट तथा अनेक मंत्रालयों से पुरस्कृत किया गया जिसमें नगर नियोजन, वन व पर्यावरण तथा बागवानी व मृदा संरक्षण शामिल थे। कांग्रेस पार्टी ने मणिपुर उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर कर अध्यक्ष वाई. खेमचंद को 'एक उचित समय में' अयोग्यता प्रार्थना पर निर्णय करने का निर्देश देने का अनुरोध किया। सितंबर, 2017 को उच्च न्यायालय ने यह कह कर याचिका खारिज कर दी कि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका लंबित है जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा अयोग्यता प्रार्थना पर अध्यक्ष को निर्णय का निर्देश देने पर सवाल उठाए गए हैं। 29 जनवरी, 2018 को अपीलकर्ता ने पुनः उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। न्यायालय ने 23 जुलाई 2019 को कहा कि अध्यक्ष एक अर्ध-न्यायिक अधिकारी हैं जिनसे उचित समय में निर्णय लेने की आशा की जाती है, जो सदन के निर्धारित कार्यकाल पांच साल से बहुत कम हैं। लेकिन उसने इस मामले में आदेश देने से इनकार

कर दिया। इसके बाद मामला सर्वोच्च न्यायालय पहुंच गया। जस्टिस नरीमन की अध्यक्षता में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अध्यक्ष वाई. खेमचंद से कहा कि वे चार सप्ताह की समय सीमा में अयोग्यता याचिकाओं पर फैसला करें। इस प्रकार पहली बार अदालत ने अध्यक्ष के निर्णय की समय सीमा निर्धारित की। लेकिन खेमचंद ने चार सप्ताह में आदेश नहीं दिया तथा दस दिन का समय और मांगा। दस दिन बीत जाने के बाद उन्होंने 15 दिन का समय और मांगा जिसे पीठ ने स्वीकार नहीं किया। पीठ ने यूनाजोम श्यामकुमार सिंह को राज्य कैबिनेट से हटा दिया और उनको अगले आदेशों तक विधानसभा में प्रवेश करने से प्रतिबंधित कर दिया।¹¹

संविधान के अनुच्छेद 212 ने न्यायपालिका को विधायिका की कार्यवाही में हस्तक्षेप से प्रतिबंधित किया है। इसी अनुच्छेद के अंतर्गत अध्यक्ष संरक्षण प्राप्त कर पार्टी नेताओं के इशारे पर खेल करने की स्वतंत्रता प्राप्त करते हैं। धूनाजोम श्यामकुमार सिंह के मामले में अदालत ने अयोग्यता याचिकाओं पर अध्यक्ष के मनमाने तरीके से फैसला न करने या निष्क्रियता पर अनुच्छेद 142 का प्रयोग किया। यह अनुच्छेद सर्वोच्च न्यायालय को किसी मामले में न्याय देने के लिए कोई आवश्यक आदेश देने का अधिकार देता है। इसके लगभग एक साल बाद सर्वोच्च न्यायालय ने गोवा मामले में अध्यक्ष के निर्णय की समय सीमा मामले में फिर हस्तक्षेप किया। जुलाई, 2019 को दस कांग्रेस विधायकों तथा महाराष्ट्रवादी गोमंतक पार्टी के दो विधायकों ने पालाबदल की और भाजपा में शामिल हो गए। पार्टी ने उनको मंत्रालय तथा अन्य शक्तिशाली पद दिए। अध्यक्ष ने अयोग्यता प्रार्थनाओं पर डेढ़ वर्ष तक निर्णय नहीं किया। इसके बाद कांग्रेस ने सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जिसने 20 अप्रैल, 2021 तक निर्णय का आदेश दिया। इसी साल कोलकाता उच्च न्यायालय ने पश्चिम बंगाल विधानसभा अध्यक्ष को मुकुल राय के खिलाफ अयोग्यता याचिका पर निर्णय की समय सीमा तय की जो भाजपा के टिकट पर चुने जाने के बाद तृणमूल कांग्रेस में चले गए थे। अतः दलबदल-विरोधी कानून को प्रभावी बनाने के लिए एक संशोधन कर अयोग्यता मामले में निर्णय करने की शक्ति अध्यक्ष से वापस ले ली जाए। यह शक्ति एक स्वतंत्र अधिकारी को दी जानी चाहिए।¹²

यूनाजोम शिवकुमार सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था, संसद को गंभीरता से संविधान संशोधन पर विचार करना चाहिए ताकि लोकसभा व विधानसभाओं के अध्यक्षों को अयोग्यता मामलों में शक्तियों को बदला जा सके जो दसवीं अनुसूची के अंतर्गत मिलती हैं। सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश अथवा किसी बाहरी स्वतंत्र व्यवस्था की अध्यक्षता में एक स्थाई न्यायाधिकरण का गठन किया जाए जो यह सुनिश्चित करे कि ऐसे विवादों का तेजी से व निष्पक्ष तरीके से समाधान हो। इस प्रकार दसवीं अनुसूची में प्राविधानों को वास्तविक शक्ति प्राप्त होगी जो हमारे लोकतंत्र के समुचित कामकाज के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। केवल उचित समय सीमा में फैसला करने वाला स्वतंत्र अधिकारी ही राजनीतिक पार्टियों तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों को हतोत्साहित कर सकता है कि वे मतदाताओं का जनादेश उलटने या उसमें परिवर्तन के लिए अवसरवादी समझौते न करें। यह समय सीमा तीन महीने होनी चाहिए और केवल तार्किक आधार होने पर ही उसे तीन महीने और विस्तार देना संभव हो। कानून में संशोधन कर किसी दलबदल को सदन के कार्यकाल में लाभ का पद मिलने से वंचित किया जाना चाहिए। यदि पालाबदल करने वालों को दलबदल

के बाद कोई लाभ न मिले तो वे दलबदल क्यों करेंगे ? सरकार को कानून में संशोधन कर ऐसे परिवर्तन करे जिससे, राजनीति में 'चरित्र, व्यवहार व क्षमता' को प्राथमिकता मिल सके।¹³

दलबदल एक राजनीतिक समस्या है और उसके विधिक समाधान की अपेक्षा करना विवेकसम्मत नहीं। राजनीतिक समस्या का राजनीतिक समाधान ही हो सकता है। इसके लिए राजनीतिक दलों को अपनी राजनीतिक संस्कृति को सुधारना होगा। दल अपने सदस्यों को विचारधारा का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण दे। उन्हें लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बारे में सजग किया जाए। योग्य एवं प्रतिबद्ध लोगों को राजनीति से जोड़ने पर भी जोर देना होगा। मतदाता को गैर जिम्मेदार राजनीतिक दल और निष्ठाविहिन नेता से कोई आस नहीं रखनी चाहिए। उनकी पहचान हो और अगर मतदाता अपने वोट की ताकत से इन लोगों को सबक सिखाना शुरू कर देगा तो जल्द ही अवसरवाद का यह दुष्चक्र खत्म हो जाएगा।

.....

सन्दर्भ सूची

1. दैनिक जागरण, 24 जनवरी 2022 पृ. 7
2. डा. एके वर्मा, विश्व के किसी लोकतंत्र में ऐसा कानून नहीं जो जनप्रतिनिधियों को अपने दल का बंधक बना दे, मध्यप्रदेश जनसंदेश, 9 मई 2022 पृ. 7
- 3.चेतना नेहरा, लोकतंत्र और दल-बदल, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, 2020
- 4.दल-बदलू, दीपक दीक्षित, किंडल प्रकाशन 2019
- 5.पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 1997
- 6.अभिषेक श्रीवास्तव, राजनीतिक अवसरवाद की हैं यह बदरंग तस्वीर, दैनिक जागरण, 24 जनवरी 2022 पृ. 7
- 7.अभिषेक श्रीवास्तव, राजनीतिक अवसरवाद की हैं यह बदरंग तस्वीर, दैनिक जागरण, 24 जनवरी 2022 पृ. 7
- 8.डीएन भटकोटी, लोकतंत्र में आई इस विकृति के मूल में हैं सत्ता लोभ, दैनिक जागरण, 24 जनवरी 2022 पृ.7
- 9.जगदीप छोकर, दैनिक जागरण, मतदाता करे अपने प्रतिनिधि का चयन, 24 जनवरी 2022 पृ. 7
10. अरुण सिन्हा, दल-बदल कानून व अध्यक्ष की शक्तियां, पायनियर, 12 मई 2022 पृ. 6
- 11.स्थानीय चुनाव, मध्यप्रदेश जनसंदेश 11 जून 2022 पृ. 6
- 12.परिवारवाद पर प्रहार, दैनिक जागरण, 27 मई 2022 पृ. 8
- 13.रजनी कोठारी (अनुवाद अभय कुमार दुबे) भारत में राजनीति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2023

